लेख

SDES-International Journal of Interdisciplinary Research
(Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN (O): 2582:7162
Crossref DOI: 10.47997/SDES-IJIR/1.2.2020.29-82
https://shreedadueducational.com/journal

गीता दर्शन का शैक्षिक वैशिष्ट्य

डॉ0 नित्या तोमर
(प्राचार्या)
ब्राइट फ्यूचर टी. टी. कॉलेज
निर्माण नगर, जयपुर, राज0
Corresponding Email: nityatomer@gmail.com

सारांश

प्राचीन भारतीय वाङ्गमय का भारतीय सभ्यता संस्कृति में अभूतपूर्व स्थान है। चारों वेद, उपनिषद्, पुराण, भागवत् गीता, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, साँख्य योग, न्याय, वेदान्त आदि भारतीय दर्शनों के अन्तर्गत आते है। प्राचीन तथा अर्वाचीन दर्शनों के अन्तर्गत शैक्षिक अभितार्थ के भी दर्शन होते है। शिक्षा का क्या अर्थ है, शिक्षा किसे दी जाए ? कैसे प्रदान की जाए ? क्या पढ़ाया जाए ? आदि समान प्रश्नों के उत्तर भारतीय वाङ्गमय में प्राप्त होते हैं। शैक्षिक अभितार्थ रूपी मक्खन को निकालनें के लिए भारतीय वाङ्गमय को मथना पडेगा और समाज को उस मक्खन रूपी ज्ञान से अभिभूत करना होगा। इसी दिशा में प्रयास करते हुए भारतीय प्राचीन वाङ्गमय में अद्भूत ग्रन्थ श्रीमद्भगवत्गीता के अन्तर्गत स्थित ज्ञानरूपी मक्खन को निकालने का प्रयास किया जा रहा है। गीता एक महान्, शाश्वत एवं असीम, अनन्त जीवन को प्राप्त कराने वाला ग्रन्थ है। यह जीवन में चरम और लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक है। शैक्षिक अभितार्थ को जानने की दृष्टि से भी इसकी नितान्त उपयोगिता सिद्ध है। इसके उपदेशो में निहित शैक्षिक वैशिष्ट्य को जानना परम आवश्यक इसलिए है कि हम अपने अन्तिम लक्ष्यों को बिना किसी रूकावट के प्राप्त कर सकें।

मुख्य शब्दावली :– भगवत्गीता, सात्विक, राजस, तामस, पर, अरा, ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्तियोग, शैक्षिक उद्देश्य, शिक्षा छात्र संकल्पना

प्रस्तावना

निस्संदेह भारतीय दर्शनों की आस्तिक दर्शनों की कोटि में गीता दर्शन का वैशिष्ट्य अभूतपूर्व है। गीता दर्शन महाभारत के भीष्म पर्व का एक महत्त्वपूर्ण अंश है। जिस के अन्तर्गत जगद्गुरू श्री कृष्ण द्वारा शिष्य के प्रतीक रूप में अर्जुन को शिक्षा दी गयी है।

भगवत्गीता का शाब्दिक अर्थ हैं "प्रभु का गीत" जिसमें भगवान कृष्ण अनिच्छुक अर्जुन को युद्ध करने के लिए तैयार करते हैं। गुरू शिष्य संवाद के रूप में जहाँ शिक्षा ग्रन्थ है, वहाँ दूसरी ओर यह निर्देशन ग्रन्थ भी है। क्योंकि समस्याग्रस्त अर्जुन के समस्त प्रश्नों एवं समस्याओं अथवा दुविधाओं को प्रस्तुत करके भी कृष्ण, अर्जुन से विचार विमर्श कर स्वयं निर्णय लेने की स्वतन्त्रता देते हैं। इस तरह गीता धर्म, दर्शन, शिक्षा, निर्देशन, मनोविज्ञान का समन्वय ग्रन्थ है। यह मानव मात्र के लिए जीवन मार्ग बताने वाला एक रहस्यमय ग्रन्थ है। स्वयं भगवान वेदव्यास ने कहा है –

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः
शास्त्रसङ्ग्रहैः।
या स्वयं पदम्नाभस्य
मुखपद्माद्विनिः सृता।।

(महा, भीष्म 43/1)

अर्थात् गीता का ही भली प्रकार से श्रवण, कीर्तन, पठन–पाठन मनन और धारण करना चाहिए, अन्य शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता हैं ?

SDES-International Journal of Interdisciplinary Research
(Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN (O): 2582:7162
Crossref DOI: 10.47997/SDES-IJIR/1.2.2020.29-82
https://shreedadueducational.com/journal

क्योंकि वह स्वयं पदम्नाभ – भगवान के साक्षात मुख–कमल से निकली हुई है।

गीता दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त :–

1. गीता का प्रमुख सिद्धान्त अनादिकाल से अज्ञानवश संसार सागर में विचरण कर रहे जीव को परमात्मा की प्राप्ति करवा देने में है। जिसके लिए दो निष्ठाओं का प्रतिपादन किया गया है – 'ज्ञान निष्ठा' अथवा सांख्य योग और 'योग निष्ठा' अर्थात कर्मयोग।

   लोकेऽस्मिान्दिवविद्या निष्ठा ———— योगिनाम्।। 3/3

2. गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों का सम्यक्तया प्रतिपादन हुआ है। यह तीनों में समन्वय स्थापित करती है।
3. गीता के अनुसार परमात्मा की उपासना भेद–दृष्टि (सगुण) की जाये अथवा अभेद दृष्टि (निर्गुण) की जाये दोनों का फल एक ही है। भेदोपासना तथा अभेदोपासना – दोनों ही उपासनाएँ भगवान की उपासना है। जो पुरूष परमात्मा को निर्गुण – निराकार मानता है, उनके लिए वे निर्गुण निराकार है –

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं ———— ध्रुवम (12/3)

जो पुरूष उन्हें सगुण साकार मानते है उनके लिए वे सगुण साकार है ——— कविं ——— परस्तात् (8/9)

4. गीता के अनुसार यह संसार परा और अपरा दो प्रकार की प्रकृतियों के संयोग से बना है। जिसमें परा प्रकृति जीवात्मा है और अपरा प्रकृति पंच तत्वों (पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, अग्नि) से निर्मित जड़ पदार्थ है।
5. गीता में समता की बात प्रधान रूप से आयी है।
6. गीता में कहा गया है कि अनासक्त भाव से कर्म करने से परमात्मा की प्राप्ति होती है।

तस्मादसक्तः ———— पूरूषः (3/19)

शैक्षिक वैशिष्ट्य :–

गीता में ज्ञान की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि ज्ञान के तीन भेद होते है –

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः। (18/19)

सात्विक ज्ञान, राजसी ज्ञान तथा तामसी ज्ञान को क्रमशः लक्षण बताते हुए कहा है कि –

सात्विक ज्ञान –

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्त विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धिसात्विकम (18/20)

राजस ज्ञान –

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्दृयाग्निधान

तामस ज्ञान –

यत्तु कृत्स्नक्देकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम (18/22)

गीता में वर्णित ज्ञान की व्याख्या में ही शिक्षा की परिभाषा निहित है। उपर्युक्त सात्विक, राजस तथा तामस ज्ञान के सन्दर्भ में यदि शिक्षा की परिभाषा दी जाए तो गीता के अनुसार शिक्षा वह है जो विविधता में एकता को दिखाती है तथा उस सर्वात्मा की अनुभूति करवाना है जो केवल एक सार्वभौमिक सत्ता है। तीनों प्रकार के ज्ञान में सात्विक ज्ञान को श्रेष्ठ बताया गया है जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक–पृथक सब भूतो में एक अविनाशी परमात्मा को विभागरहित समभाव से स्थित देखता है। शिक्षा द्वारा ही आत्मा की अनुभूति सम्भव है। गीता के अध्याय 15 के 10वें श्लोक में कहा भी गया है। कि केवल ज्ञान रूपी नेत्रोवाले विवेकशील ज्ञानी है। अर्न्तरात्मा में दर्शन कर सकते है, मोहन्ध–प्राणी नही।

विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः (15/10)

शिक्षा के उद्देश्य :– शिक्षा का उद्देश्य सात्विक कर्म अर्थात् (जो कर्म शास्त्रविधि से नियत किया

SDES-International Journal of Interdisciplinary Research
(Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN (O): 2582:7162
Crossref DOI: 10.47997/SDES-IJIR/1.2.2020.29-82
https://shreedadueducational.com/journal

हुआ हो और कर्त्तापन के अभिमान से रहित हो तथा फल न चाहने वाले पुरूष द्वारा बिना राग द्वेष के किया गया हो) की ओर प्रेरित करना होना चाहिए।

नियतं सङ. गरहितभरागद्वेषतः कृतम ——— (18/23)

शैक्षिक उद्देश्य मनुष्य को संगरहित अहंकार के वचन से न बोलने वाला, धैर्य और उत्साह से युक्त तथा कार्य के सिद्ध होने और न होने में हर्ष–शोकादि विकारो से रहित वाला बनाना होना चाहिए।

मुक्तसंगोऽनहंवादी ——— उच्यते।। (18/26)

सात्विक बुद्धि या विकास करने के उद्देश्य से शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।

प्रवृत्तिं च ——————— सात्विकी (18/30)

तथा पुरूष को स्थितप्रज्ञ बनाया जाना चाहिए। स्थित प्रज्ञ का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि ——— प्रजहाति ——— स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते (2/55)

साथ ही शिक्षा सत्य के ज्ञान के साथ–साथ व्यक्ति को निष्काम कर्म करने के लिए तैयार करे। गीता कर्म से मुक्ति की शिक्षा नहीं देती वरन् कर्म करने के लिए मुक्त रहने की शिक्षा प्रदान करती है। जिससे व्यक्ति स्वधर्म को समझ कर अपने उत्तरदायित्वों को वहन करना सीखे और प्रतिफल की इच्छा न करे।

कर्मण्येवाधिकारास्ते ——————— कर्मणि (2/47)

गीता के अनुसार शैक्षिक उद्देश्यों को निम्न प्रकार समझा जा सकता है

1. शिक्षा का उद्देश्य सत्य का ज्ञान प्राप्त करना है।
2. शिक्षा द्वारा आत्मानुभूति अर्थात् आत्मा का ब्रह्म से मिलन मानव की शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। यह मिलन संसार से विरक्त होकर नही अपितु समाज में रहकर ही संभव है।
3. शिक्षा ही व्यक्ति में उचित और सही निर्णय लेने की क्षमता उत्पन्न करती है।
4. व्यक्ति में आसुरी सम्पदा की जगह दैवी सम्पदाओं का विकास करना।
5. सात्विक गुणों का विकास करना क्योंकि सात्विक गुणों से युक्त व्यक्ति आसक्ति रहित, अहंकार रहित एवं हर्ष शोकादि से रहित होकर निस्वार्थ कर्म करता है।
6. शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में नैतिक, सामाजिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्यों का विकास करना है।
7. शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को अपने मन एवं बुद्धि पर नियंत्रण रखने योग्य बनाना है। इन पर नियंत्रण रखने से सही कर्म कर सकेगा।

गीता के अनुसार शैक्षिक पाठ्यक्रम :–

गीता में वर्णित उपदेशो के आधार पर शिक्षा के पाठ्यक्रम को समझा जाए तो दो आधारो पर शैक्षिक पाठ्यक्रम को वर्गीकृत किया जा सकता है।

तत्त्व पर आधारित पाठ्यक्रम

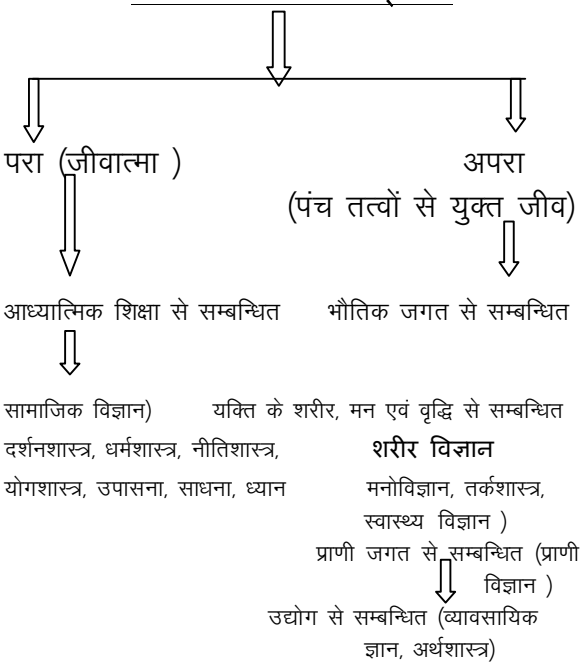

SDES-International Journal of Interdisciplinary Research
(Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN (O): 2582:7162
Crossref DOI: 10.47997/SDES-IJIR/1.2.2020.29-82
https://shreedadueducational.com/journal

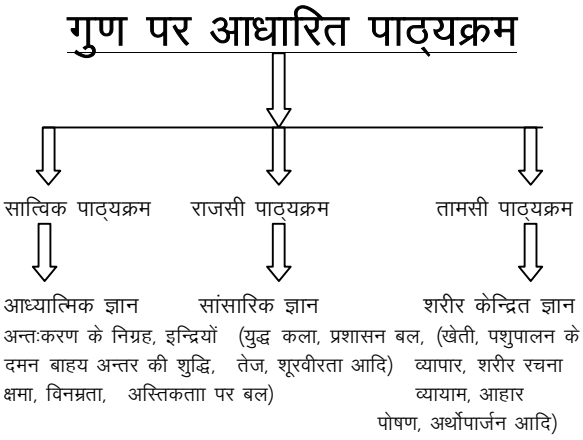

इस प्रकार गीता के अनुसार शैक्षिक पाठ्यक्रम आत्मिक जगत तथा भौतिक जगत दोनों से ही सम्बन्धित है। परा पाठ्यक्रम साध्य है तो अपरा पाठ्यक्रम साधन है।

शिक्षण विधि :–

शिक्षा क्रम में शिक्षण विधियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अध्ययन अध्यापन की प्रक्रिया शिक्षण विधियों के बिना सम्भव नहीं हो सकती है। गीता के अनुसार शिक्षण विधियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता हैं :–

शिक्षण विधियाँ

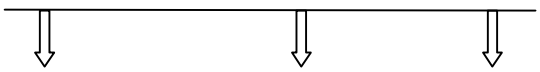

ज्ञान योग	कर्मयोग	भक्ति योग
तर्क विधि– प्रश्नोत्तर विधि	प्रत्यक्ष विधि – करके सीखना	श्रवण विधि पढ़न विधि योग विधि

ज्ञान योग पर आधारित विधियों का ज्ञानात्मक कर्मयोग पर आधारित विधियों को कर्मप्रधान तथा भक्तियोग पर आधारित विधियों को भावनात्मक विधियाँ कहा जा सकता है। ये तीनों ही विधियाँ अन्योन्याश्रित विधियाँ है। एक दूसरे के बिना इनका अस्तित्व सम्भव नहीं है।

गीता के चतुर्थ अध्याय के चौतीसवें तथा पैंतीसवे श्लोक में तत्त्व ज्ञान की प्रशंसा की है। तृतीय अध्याय के तीसवें श्लोक में भक्ति प्रधान कर्मयोग के अर्न्तगत कर्म करने के लिए प्रेरित किया गया है। साथ ही दूसरे अध्याय में "बुद्धिर्योगेत्विमां" श्रृणु (2/39) से लेकर "योगमवाप्स्यासि" (2/53) तक समबुद्धि रूप कर्मयोग का वर्णन किया है। पंचम अध्याय के सोलहवें श्लोक में ज्ञान का महत्त्व बतलाकर, सत्रहवें में ज्ञान योग के एकान्त साधन का वर्णन किया है। इस प्रकार इन अध्यायों में इन तीन विधियों का विषद विवेचन मिलता है।

शिक्षक छात्र संकल्पना :–

भगवत गीता में शिक्षक एवं छात्र दोनों को समान रूप से महत्त्व प्रदान किया गया है शिक्षक एवं छात्र का शरीर निम्न तत्वों से मिलकर निर्मित हुआ हैं :–

शिक्षक एवं छात्र शरीर → इन्द्रियाँ + मन + बुद्धि +आत्मा

गीता शिक्षक एवं छात्र में स्थित आत्मा की नित्यता और निर्विकारता का प्रतिपादन अध्याय 2 के 12वें (न त्वेवाहं) तथा 13वें (देहिनोऽस्मिन–––––) श्लोक में किया गया है। तथा 23वें श्लोक में ––––––––

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापों न शोषयतिमारूतः।। (2/23)

वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकती अर्थात् इस श्लोक में पृथ्वी आदि चार भूतों को आत्मा का नाश करने में असमर्थ बतलाकर निर्विकार आत्मा का नियत्व तथा निराकात्व सिद्ध किया है।

गीता के अनुसार शिक्षार्थी पंच तत्वों (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) मन, अहँकार, बुद्धि, मूल प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी

(सत, रज, तम) माया तथा दस इन्द्रियों (कान, आँख, जीभ, नाक, त्वचा, हाथ, पैर, उपस्थ गुप्त, एक मन) तथा इनके विषयों (शब्द रूप, गंध, स्पर्श) से युक्त नाम रूपी प्राणी ही नहीं है, उनमें आत्मा का निवास है, वह आत्मा दैवीय है। यह संकल्पना एक अध्यापक के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह सभी छात्रों में दैवीय तत्व के दर्शन कर एक और समान मानता है तथा दूसरी ओर उनमें स्थित भिन्नताओं के भी दर्शन करता है। ये भिन्नताएँ छात्रों के अन्तर्गत उनकी शारीरिक एवं मानसिक आधार पर भिन्न–भिन्न हो सकती है। अध्यापक द्वारा छात्रों में समानता एवं विभिन्नताओं के दर्शन करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि शिक्षा के लिए छात्रों के दोनों स्वरूप महत्वपूर्ण हैं।

गीता में शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिष्य को कहा गया है कि उसके अन्तर्गत शिक्षा देने वाले के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए। अविवेक तथा अश्रद्धा ज्ञान प्राप्ति में बाधक होते है। अतः छात्र को विवेक द्वारा संशय आदि का नाश करके तथा अध्यापन में पूर्ण विश्वास रख कर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च
—————————— संश्यात्मनः। (4/40)

<u>गीता के अनुसार सत्पात्र अर्थात् शिष्य के लिए निम्न गुण बतायें हैं :–</u>

- गुरू में दोष दृष्टि न रखता हो । म चाशु ——————— सूयति (18/67) ये मे ——————— कर्मभि। (3/31)
- ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिष्य में श्रद्धा, भक्ति और सरलभाव की आवश्यकता होती है। तद्विद्धि———दर्शिन। (4/34)
- जो विवेक द्वारा संशयों का नाश करने में समर्थ हो।
- शिष्य को ज्ञान का घमंड ना हो।
- शिष्य को गुरू के प्रति संशय युक्त नहीं होना चाहिए। अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च ——————— विनश्यति (4/40)
- संशय रहित इन्द्रियों व बुद्धि को वश में किया हुआ छात्र ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है।
- गुरू के प्रति समर्पण भाव रखता हो। गीता के 12वें अध्याय के छठे श्लोक में 9वें अध्याय के अन्तिम श्लोक में समर्पण भाव का उल्लेख किया गया है।
- शिष्य गुरू के प्रति दोष दृष्टि वाला नहीं होना चाहिए। इदं तु ते —————————— सूयवे (9/1) गुरू के प्रति अनसूयु दृष्टि वाला होना चाहिए।
- शिष्य गुरू के अन्तर्गत सम्पूर्ण ज्ञान के दर्शन करने वाला होना चाहिए। पश्चामि ———— दिव्यान् (11/15)

<u>गीता में शिष्य की भाँति ही गुरू के लिए भी कुछ अपेक्षित अहर्ताएँ प्रतिपादित की गई है :–</u>

- गुरू को शिष्य की हितकामना वाला होना चाहिए। गुरू वही शिक्षा दे जो शिष्य के हित ही हित से भरी हो। यत्तेऽहं ——————— हितकाम्यया। (10/1)
- गुरू सभी को समभाव से देखता हो तथा वह शिष्य तथा किसी भी प्राणी को अपने से भिन्न नहीं समझता। इस कारण से उस या किसी में भी विषमभाव नहीं रहता। बह्मभूत ———————————— परांम। (18/54) गुरू शिष्य को अपने कर्त्तव्य पालन में प्रेरित करने वाला होना चाहिए, जो निरन्तर उसको अपने उत्तरदायित्वों को पहचान करवाता रहे। जिस प्रकार कृष्ण अर्जुन को करवाते रहे। यथा (2/17, 37, 3/30, 3/12, 3/13, 8/7, 11/34)
- गुरू के द्वारा शिष्य को अपने विराट रूप में अपने सम्पूर्ण ज्ञान का दर्शन करवाया जाना

SDES-International Journal of Interdisciplinary Research
(Peer Reviewed Refereed Journal) ISSN (O): 2582:7162
Crossref DOI: 10.47997/SDES-IJIR/1.2.2020.29-82
https://shreedadueducational.com/journal

चाहिए। जिससे वह उसकी महत्ता को भलि भाँति समझ कर उसके प्रति अपनी श्रद्धा रख सके। अनेक ———— विश्वतोमुखम् (11/10,11)

- सदगुण प्रधान ब्राह्मण रूपी गुरू के स्वाभाविक कर्म बताते हुए 18वें अध्याय के 42वें श्लोक में बताया गया है। शमो——————————स्वभावजम् (18/42) अर्थात् अन्तःकरण का निग्रह करना, इन्द्रियों का दमन करना, धर्मपालन के लिए कष्ट सहना, बाहर भीतर से शुद्ध रहना, शिष्य के अपराधों को क्षमा करना, मन, इन्द्रिय और शरीर को सरल रखता, वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदि में श्रद्धा रखना, वेद शास्त्रों का अध्ययन करना और परमात्मा के तत्व का अनुभव करना।
- गुरू को चाहिए कि वह शिष्य के प्रति बुद्धि में संशय या दुविधा उत्पन्न करने वाला न होकर वरन् भ्रम को दूर करने वाला होना चाहिए। न बुद्धि —————————— समाचरन (3/26)
- गुरू को अपना उपदेश अथवा शिक्षा ऐसे शिष्य को ही नहीं देनी चाहिए, जो स्वधर्म पालन रूप, तप करने वाला न हो, भक्तिरहित हो, जो शिक्षा को सुनने की इच्छा न रखता हो तथा जो गुरू में दोष दृष्टि रखता हो। इदं ———— सूयति। (18/67)

उपसंहार :–

गीता साक्षात् चराचरवन्दित, परमपुरूषोत्तम भगवान नारायण के मुखारविन्द से निसृत वह अमृतवाणी है जो सर्वकालिक है। इसमें निहित शिक्षा गुरू शिष्य की परम्परा का अनुपम उदाहरण है। गुरू शिष्य के संवाद के रूप में जो शिक्षा प्रदान की गयी है वह देश, काल, परिस्थिति सभी के लिए समीचीन है, शाश्वत है, अनुपम है तथा सार्थक है।

गुरू के मुख से निसृत ज्ञान की गंगा में केवल उनका शिष्य ही धन्य नहीं हुआ वरन् सम्पूर्ण समाज को सुसंस्कृत किया है। ज्ञान की गंगा में सभी पवित्र हुए हैं एवं गुरू का अपने समाज तथा देश के प्रति क्या कर्त्तव्य होता है। उसका समुचित उदाहरण गीता में प्रस्तुत किया गया है। एक गुरू अपने समाज के प्रति किंकर्त्तव्यविमुख नहीं हो सकता है। उसे कर्म करना ही पड़ता है समाज को सही दिशा दिखाने के लिए। तथा एक शिष्य को भी अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिए सजग हो गुरू के दिशा निर्देशानुसार कर्म करना पड़ता है, साथ ही दोनों को कर्मफल की इच्छा से विमुक्त होना चाहिए। उसकी सार्थकता तभी है जब कि वह फल की इच्छा से नहीं किए जाए।

साथ ही गीता का शिक्षा दर्शन यह भी कहता है कि कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिए। कर्मों का त्याग कर देने मात्र से ज्ञान निष्ठा सिद्ध नहीं होती (3/4)। इसलिए मन इन्द्रियों को वश में करके निष्काम भाव से कर्म करने वाला श्रेष्ठ है। (3/6)

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।। (3/7)

सन्दर्भ :–

1. श्रीमद्भगवत्गीता (तत्वविवेचनी हिन्दी टीका) जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस गोरखपुर
2. श्रीमद्भगवद्गीता (यथारूप) श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
3. शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ0 लक्ष्मीलाल के. ओड़, राज0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
''प्राचीन गणित में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द''